Estd: March 2018

ISSN: 2581-6675

PIJSSL

Praxis International Journal Of Social Science and Literature

(A Monthly Research Journal Published in English, Hindi, Urdu and Sanskrit)

Peer Reviewed Journal, Refereed Journal, Indexed Journal, Online Journal

Vol - 2 Issue - 2 February – 2019

Editor

Anish Kumar

Website: www.pijssl.com Email: editor.pijssl@gmail.com

Praxis International Journal of Social Science and Literature
ISSN: 2581-6675
Vol - 2, Issue - 2, February - 2019
Website: www.pijssl.com, Email: editor.pijssl@gmail.com

भारतीय दर्शन में कर्मविद्या : जैनदर्शन के विशेष संदर्भ में

डॉ. योगेश कुमार जैन
सहायक आचार्य
जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्म तथा दर्शन विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान, भारत
Email: ykjain99@gmail.com

भारतीय दर्शन की आध्यात्मिक विधाओं में 'कर्म' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी अध्यात्म-चिन्तकों ने देहेन्द्रिय, सुख-दुःख एवं नाना योनियों में जन्मादि की प्राप्ति का कारण कर्म को माना है। कर्म के स्वरूप में मतभेद होते हुए भी भारतीय दर्शनों में एकमत से कृतकर्मों को अनिवार्य रूप से फलदायी माना है, चाहे कर्म स्वयं अपना फल दें अथवा ईश्वर, अपूर्व, अदृष्ट और धर्मा-धर्म के माध्यम से फलित हों। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, जैन, बौद्ध, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा-वेदान्त आदि सभी दर्शन कर्मवाद के समर्थक हैं। इन सभी दर्शनों ने आत्मा के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक दोनों ही स्वरूप के संदर्भ में कर्म की भूमिका पर विस्तार से चिन्तन किया है। वस्तुतः आत्म चिन्तन कर्म चिन्तन से निरपेक्ष होकर संभव ही नहीं है। इसी सत्य को उजागर करते हुए भगवान महावीर ने कहा कि 'जो आत्मा को देखता है वह लोक को देखता है, वह कर्म को देखता है और कर्म की हेतुभूत क्रिया को देखता है'।[1]

कर्म और आत्मा के इस परस्पराश्रित स्वरूप वर्णन को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने लिखा है कि "जो केवल अध्यात्म का अनुशीलन करना चाहते है किन्तु कर्मशास्त्र को समझना नहीं चाहते, वे न अध्यात्म की गहराइयों को समझ सकते है और न वहां तक पहुंच ही सकते है।[2] अन्यत्र उनका कहना है कि 'कर्मशास्त्र के गंभीर अध्ययन का अर्थ है अध्यात्म की गहराइयों में जाने का एक गहरा प्रयत्न है।'[3] कर्मशास्त्र हमारे आचरणों, व्यवहारों और क्रियाओं की कार्य-कारणात्मक मीमांसा है। इस अपेक्षा से अध्यात्मविद्या को कर्मविद्या का सहारा लेना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो जाता है। इसी प्रकार कर्मविद्या अपने अस्तित्व के लिए चेतना और तज्जन्य परिणामों पर आधृत है। फलतः प्रतिपक्षी सिद्धान्त होते हुए भी इन्हें एक-दूसरे से निरपेक्ष रखकर समझना दुःसाध्य ही नहीं असाध्य भी है। उपर्युक्त तथ्य की संपुष्टि के लिए यह समझना आवश्यक है कि कर्म है क्या? कर्म का स्वरूप क्या है? कर्मवाद अस्तित्व में कब आया? कर्मवाद के आधार क्या है? अध्यात्म शब्द का अर्थ क्या है? अध्यात्म की व्याख्या कर्म से कैसे होती है?

कर्म है क्या?

इस विषय में भारतीय चिन्तन का सार यह है कि कर्म आत्मा की शुभाशुभ प्रवृत्ति से आकर्षित होने वाला सूक्ष्म जड़ द्रव्य है। आत्मा की क्रिया कार्मण-जाति के पुद्गलों को आत्मा के साथ जुड़ने में हेतुभूत बनती है। जुड़ने के पश्चात् ही उनमें कर्मसंज्ञा का आधान होता है। विसम्बन्ध की स्थिति में वे पुद्गल विशेष हैं कर्म नहीं। जड़रूप होने पर भी आत्मा से संलग्न होने

के पश्चात् कर्म उसी प्रकार क्रियाशील बन जाते है, जैसे शराब पी लेने पर अपना प्रभाव दिखाने में समर्थ हो जाती है। विशेष यह कि कर्मसंज्ञा और कर्म में फलदान शक्ति दोनों ही चेतना के साथ सम्पर्क स्थापित होने पर ही सार्थक सिद्ध होती है।

कर्म का स्वरूप क्या?

इस सन्दर्भ में पण्डित सुखलाल जी के अनुसार भारतीय चिन्तकों की दो परम्पराएं है- पहली बौद्ध, न्याय दर्शन आदि की परंपरा और सांख्य, वेदान्त आदि की दूसरी परंपरा है।[4] बौद्ध दर्शन क्लेशावरणं, ज्ञेयावरण आदि अनेकविध कर्मावरणों को मानता है। इनके मत में चित्र का वह आवरण मात्र संस्कार रूप है[5], द्रव्यस्वरूप नहीं। न्याय आदि दर्शनों के अभिमत से भी ज्ञानावरण अर्थात् अज्ञान, ज्ञानगुण का प्रागभाव मात्र होने से अभावरूप ही फलित होता है। जबकि सांख्य, वेदान्त के अनुसार वह आवरण जड़द्रव्यरूप अवश्य सिद्ध होता है। सांख्य[6] के अनुसार बुद्धिसत्व का आवारक तमोगुण है जो एक सूक्ष्म जड़ द्रव्यांश मात्र है। वेदान्त दर्शन में मूलासिद्धा और तुलाविद्या[7] रूप से एकाधिक आवरणों की कल्पना की है जो जड़द्रव्यरूप ही है।

जैन दर्शन कर्म को अत्यन्त स्पष्ट रूप से जड़द्रव्यरूप स्वीकार करता है। साथ ही रागद्वेषात्मक परिणाम, जो आत्मगत हैं और पौद्गलिक कर्म का कारण और कार्य भी हैं, उसको भावकर्म के रूप में बौद्ध आदि दर्शनों की भांति संस्काररूप मानता है।[8] 'भगवतीसूत्र' में अत्यल्प शब्दों में कर्म के इन द्विरूपों को व्यक्त करते हुए कहा गया है 'चेयकडा कम्मा'[9] अर्थात् कर्म चेतनाकृत है। आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा को भावकर्म का कर्ता बतलाया है। भाव द्रव्यकर्म के कारण हैं।[10] इस प्रकार कर्मस्वरूप के विश्लेषण में आत्मा का चिन्तन कारण तत्व के रूप में स्वतः प्ररूपित हो जाता है।

कर्मसिद्धान्त को जानने की आवश्यकता?

इस प्रश्न का समाधान भी अन्ततः आत्मा-विचारणा की अपेक्षा रखता है। इस विषय पर विमर्श करने से स्पष्ट होता है कि मानव ने जब सृष्टिकर्ता के विषय में सोचना प्रारंभ किया अथवा जब आत्मजिज्ञासा का स्फुरण हुआ तभी कर्मवाद अस्तित्व में आया।

सृष्टिवादी न्याय-वैशेषिक[11] आदि दर्शनों के अनुसार सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने किया है। उपनिषद्[12] जो इन दर्शनों के आधार है उनमें अनेक स्थलों पर यह कह गया है कि परब्रह्म परमेश्वर ही इस जड़-चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् के निमित्त और उपादान कारण है।[13] गीता में भी इस विचारधारा के दर्शन होते है। एक जगह योगीराज श्रीकृष्ण कहते हैं "कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं और आदि में उनको मैं रचता हूं।[14] इस प्रसंग में यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि परम कारुणिक ईश्वर ने विसंगतिपूर्ण विश्व की रचना क्यों की? क्यों कोई दुःखी है और दूसरा सुखी? क्या कारण है कि किसी के पास प्रचुर सुख सुविधा के साधन है जबकि किसी को एक जून की रोटी भी दुर्लभ है? किसी को मनुष्य का जन्म मिला तो किसी को पशु का? सर्वत्र एकरूपता व सुख का साम्राज्य क्यों नहीं है? इन सभी शंकाओं के समाधान स्वरूप ईश्वरवादियों को कर्मसत्ता को स्वीकार करना पड़ा। मुण्डोकपनिषद्[15] में एक ओर जगत् के सृजक के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया गया है वहीं दूसरी ओर जगत्-वैविध्य का कारण कर्म को माना है। गीता में श्रीकृष्ण का भी कहना है कि प्रकृति स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः।[16]

जैन व बौद्ध परम्परा ईश्वरवादी न होने से इन्होंने सृष्टि-सृजन हेतु किसी ईश्वरीय शक्ति की कल्पना नहीं की। इनके मत में विशेषतः जैनमत में जड़ और चेतन की पारम्परिक स्वाभाविक क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जगत् उत्पत्ति और लय को प्राप्त होता रहता है।17 जहां तक जैविक जगत् की विविधता का प्रश्न है वहां जैन और बौद्ध दोनों इसका हेतु कर्म को मानते है। 'भगवती' सूत्र में भगवान् महावीर ने प्राणी-जगत् की भिन्नता (विभक्तिभाव) को कर्मजन्म बतलाते हुए कहा है कि "हेता गोयमा! कम्मओ णं जीवे णो अकम्मओ, विभत्तिभावं परिणमई।[18]" इसी प्रकार बौद्ध दर्शन में "कर्मजं लोकवैचित्र्य"[19] कहा गया है। कर्मवाद के आधार बिन्दुओं की खोज से भी यही प्रमाणित होता है कि चेतना के अभाव में कर्मविद्या निराधार सिद्ध होगी।

आगमानुसार कर्मवाद के तीन आधार हैं[20]

- आत्मा की स्वतन्त्रता कर्मवाद का पहला आधार है। संकल्प स्वातन्त्र्य के अभाव में व्यक्ति कृत के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता। फलतः दण्डनीति और आचारशास्त्र निरर्थक सिद्ध होंगे।
- कर्मवाद का दूसरा आधार है- कृत का नैतिक जिम्मेदार व्यक्ति स्वयं है। जीव जब कोई भी काम करता है तो उसे यह उत्तरदायित्व लेना होगा कि इसके लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूं। 'भगवती सूत्र'[21] में इसी तथ्य के आधार पर कहा गया है कि दुःख या सुख का कर्ता आत्मा स्वयं है। आचारांग[22], उत्तराध्ययन[23] आदि सभी जैनागमों में इसी मत की पुष्टि देखी जाती है। पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटों ने भी नैतिक उत्तरदायित्व के लिए संकल्प की स्वतन्त्रता को आवश्यक ही नहीं अनिवार्य माना है।[24]
- कर्मवाद का तीसरा आधार है पुरुषार्थवाद। जैनों ने कर्मवाद को स्वीकार करते हुए कर्म को ईश्वरीय रूप प्रदान नहीं किया है। कर्मवाद व्यक्ति को अकर्मण्य नहीं क्रियाशील बनता है। भगवान महावीर ने इस संदर्भ में कर्म के लचीले स्वरूप को बतलाते हुए कहा है कि "सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णा फला।[25]" अर्थात् सदाचारण से अर्जित कर्म अच्छा फल प्रदान करता है। शुभक्रिया से अशुभ को शुभ में बदला जा सकता है। कर्म-विषयक चेतना की सापेक्षता के प्रतिपादन के अनन्तर अध्यात्म के स्पष्टीकरण में कर्मचिन्तन की सापेक्षता की युक्ति इस प्रकार है।

इस संदर्भ में सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न है कि अध्यात्म शब्द का अर्थ क्या है? कोशकारो[26] ने अध्यात्म शब्द के संक्षेप में तीन अर्थ किये हैं-

1. देहाधिष्ठित आत्मविचार
2. शुद्धात्मा का चिन्तन
3. आत्मपरमात्मसंबंधवाद।

अध्यात्मशास्त्र का उद्धेश्य आत्मा संबंधी विषयों पर विचार करना है। अतएव उसको आत्मा के पारमार्थिक स्वरूप का निरूपण करने से पहले उसके व्यावहारिक स्वरूप को स्पष्ट करना होगा। अन्यथा यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दृश्य स्वरूप की उपपत्ती किये बिना शुद्ध स्वरूप की जिज्ञासा कैसे हो सकती है? आचारांग में इस सत्य का समर्थक विचार मिलता है। वहां कहा गया है कि जीव अपने शुद्ध स्वरूप की खोज में वर्तमान स्वरूप का चिंतन करते हैं और सोचते हैं कि मैं कहां से आया हूँ? कहां जाऊंगा? मेरे इस भवभ्रमण का हेतु क्या है[27]? हेतु की खोज करते-करते कर्म तक पहुंच जाता है।[28] इसके अलावा यह भी प्रश्न होता है कि दृश्यमान् वर्तमान अवस्थायें ही आत्मा का स्वभाव क्यों नहीं है? अतः अध्यात्मशास्त्र के लिए यह आवश्यक है कि वह पहले आत्मा की दृश्यमान् अवस्थाओं की मीमांसा करते हुए आगे बढ़े। इसीलिए वैदिक[29], बौद्ध एवं जैन[30] तीनों परम्पराओं में कर्म मूलक पुनर्जन्म की सत्ता स्वीकार की गई है। यह कार्य कर्मशास्त्र के सहयोग से ही संभव है। कर्मशास्त्र इन दशाओं को कर्मजन्य बतलाकर आत्मा से उनकी भिन्नता की सूचना देता है। 'अध्यात्मविद्या' में आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने देहावछिन्न आत्मसिद्धि के तीन मुख्य घटक माने हैं – 1. पुनर्जन्म या पूर्वजन्म (गति) 2. जाति व 3. स्थिति।[31]

कर्म और पुनर्जन्म का अविच्छेद्य संबंध है। कर्म की सत्ता स्वीकार करने पर उसके फलस्वरूप परलोक अथवा पुनर्जन्म की सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है। अतीत के कर्म वर्तमान जीवन की आधारशिला हैं व वर्तमान के कर्म आगामी जीवन की। जिन कर्मों का भोग इस जन्म में नहीं होता उनके भोग के लिए पुनः जन्म मानना अनिवार्य है। अन्यथा कृतकर्म के निर्हेतुक विनाश व अकृत के भोग का प्रसंग उपस्थित होता है।

वर्तमान जीवन की व्याख्या पूर्व आचरण (कर्म) के आधार पर की जा सकती है। वैसे ही वर्तमान आचरण के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति कहां? किस योनि में उत्पन्न होगा? यह नरक गति को प्राप्त करेगा या मनुष्य जन्म को? कर्म के आधार पर जन्म की बात न केवल जैनदर्शन में मान्य है, अपितु उपनिषद्[32] में क्रोध, लोभ से व्यक्ति आसुरी योनियों को प्राप्त करते हैं[33] व सद्गुणों के विकास से दैवीय सम्पदाओं को भोगते है।[34] गति की तरह जाति अर्थात् वह एक इन्द्रिय वाला होगा या पांच इन्द्रियों से सम्पन्न होगा इसका निर्धारक भी कर्म है। स्थिति अर्थात् जीवन काल का निर्धारण भी कृतकर्मों के आधार पर होता है।

इस प्रकार देहाधिष्ठित आत्मा की व्याख्या का सूत्र है-कर्म। कर्म के बिना अध्यात्म का कोई अर्थ नहीं है। प्रत्येक जीव की आत्मा स्वतंत्र एवं एक है, किंतु उसकी नाना अवस्थाएं घटित हो रही हैं । यह परिवर्तन, भेद क्यों होता है? वैज्ञानिक इसका कारण 'जीन' बतलाते हैं। किंतु यह समाधान भी प्रश्न को पूर्णरूपेण समाहित नहीं करता है। फिर प्रश्न होता हैं कि ऐसी जीन क्यों मिली? इसका उत्तर उनके लिए दुःसाध्य है। कर्मवाद या दर्शन ने इसका समाधान कर्म के रूप में दिया। सारा भेद कर्मकृत है। आचरण भेद से कर्मभेद और उससे जन्मभेद। इस दृष्टि से कर्मशास्त्र अध्यात्म शास्त्र का ही एक अंश है।

यदि अध्यात्मशास्त्र का उद्देश्य आत्मा के शुद्ध रूप का वर्णन करना ही माना जाये तब भी कर्मशास्त्र को उसका प्रथम सोपान मानना ही पड़ता है। इसका कारण यह है कि जब तक अनुभूत होने वाली अवस्थाओं के साथ आत्मा के संबंध का सच्चा ज्ञान न हो तब तक उनके भाविक या वैभाविक स्वरूप का बोध संभव नहीं होता है, फलतः नचिकेता की भांति शुद्धात्मा के विषय में प्रलोभन रहित जिज्ञासा होना कठिन है।

परमात्मा के साथ आत्मा का संबंध दिखाना यह भी अध्यात्मशास्त्र का विषय है। इस संबंध में जैनागमों35 उपनिषदों[36] और गीता आदि में भी अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। उपनिषदों में आत्मा शुद्ध, निरंजन, सच्चिदानन्द रूप माना है। "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्वमसि" आदि वाक्य आत्मा ही परमात्मा है इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। यही बात कर्मशास्त्र में है[37]। ज्ञानवरणीय नाम कर्म का इसीलिए पड़ा कि वह आत्मा की अपरिमित ज्ञानशक्ति को आवृत्त करता है। मोह कर्म अनन्त आनन्द की उपलब्धि में बाधक बनता है। अन्तराय कर्म आत्मा के अनन्त शौर्य को प्रकट नहीं होने देता है। इस तरह से कर्मों का नामकरण का आधार आत्मा का परमात्म स्वरूप ही है।

उपर्युक्त कतिपय तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते है कि कर्मविद्या आत्मविद्या के बिना खपुष्प की तरह असत् ही नहीं निरर्थक भी है। इसी प्रकार अध्यात्म का परिज्ञान कर्म-सिद्धान्त के बिना असम्भव है।

संदर्भ सूची :

1. आचारांग, 1/5
2. कर्मवाद, युवाचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 1
3. वही, पृ. 1
4. ज्ञानबिन्दु, पृ. 14

5. तत्वसंग्रहपंजिका, पृ. 869
6. स्यादवादरत्नाकर, पृ. 1101
7. वही, पृ. 1103
8. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गा. 6
9. भगवती, भाग तीन, पृ. 169
10. समयसार, 90-92
11. त्रैलोक्यनिर्माणनिपुणः परमेश्वरः। न्यायमंजरी, पृ. 175
12. यथोर्णनाभिः सृजते-गृह्यते च यथा पथिव्यामौषधयः सम्भवन्ति। मुण्डकोपनिषद्,1/7
13. बृहदारण्यक, 11/5/05, प्रश्नोप, 4/11
14. श्रीमद् भागवत गीता, 3/7
15. मुण्डको, 1/7 तथा ब्रह्मसूत्र, 2/1/34
16. गीता, 918
17. जैनसिद्धान्त दीपिका, 1/19
18. भगवती, 1/52 भाष्य
19. अभिधर्मकोष, 4/1
20. जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. 222-223
21. भगवती, 1/53,54
22. आयारो, 2/22
23. उत्तराध्ययन, 20/36
24. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त
25. औपपातिक सूत्र,1/56
26. बृहद हिन्दी कोष, पृ. 41
27. आयारो, 1/2
28. वही, 1/6
29. पूर्वकृतफलानुबन्धात् तदुत्पत्तिः । सति मूले तद्विपाको जात्यार्युकर्मभोगाः। न्यायदर्शन, 3/2/64
30. आयारो, 1/1-4, भगवती, 2/110
31. अध्यात्मविद्या, पृ. 55
32. ईशावस्योपनिषद्, 1/2
33. गीता, 16/4-21
34. वही, 16/1-4
35. आयारो, 5/123-140
36. कठोपनिषद्, 1/15
37. अप्पा सो परमप्पा। कर्मविज्ञान, पृ. 35

****